International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 991-993

महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित सृष्ट्युत्पत्ति

भूपेन्द्र प्रताप सिंह
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

महाभारत भारत ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व का विशालतम महाकाव्य है। महाभारत व्यष्ति एवं समष्टि के सम्पूर्ण क्रियाकलापों का वृहद् विश्वकोश है। प्राणिमात्र के जीवन एवं सर्वतोमुखी कल्याण से सम्बद्ध वैयक्तिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा व्यावहारिक मूल्यों का उपदेश महाभारत महाग्रन्थ में उपलब्ध है। महाभारत कौरव एवं पाण्डव परिवारों के मध्य भूमि तथा सत्ता सम्बन्धी अधिकार प्राप्ति हेतु निर्णायक धर्मयुद्ध का वृतान्त है जिसका तत्कालीन परिस्थिति एवं आधुनिक काल की परिस्थितियों से सम्यक् सम्बन्ध है। समय, काल, स्थिति की कल्पना हम सृष्टि अथवा जगत् के निर्माण के उपरान्त ही कर सकते हैं। भारतीय ऋषियों के अनुसार वेदों, उपनिषदों, पुराणों, धर्मशास्त्रों में वर्णित सृष्ट्युत्पत्ति विवेचना पर महाभारत में वर्णित सृष्ट्युत्पत्ति का समाकलन किया जाना चाहिए क्योंकि वेद ही हमारे ज्ञानचक्षु के द्रष्टा हैं, उन्ही के आवरण से प्राणिमात्र प्रकाशित होता है और परमपद को प्राप्त करता है।

वर्तमान समय आधुनिकता का समय है जिसमें प्राणिमात्र विशेषतः मनुष्य की जीवन एवं कार्य शैली में व्यापक परिवर्तन हुआ। आज व्यक्ति भौतिक संसाधनों एवं भोगों के जीवन को अधिक महत्त्व दे रहा है। आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास, 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की संकल्पना का वीभत्स स्वरूप हमारे समक्ष उपस्थित है। हमें सावधान होना पड़ेगा, कुछ क्षण स्थिर मनोदशा द्वारा अपने आस–पास के वातावरण से तादात्म्य स्थापित करना पड़ेगा, अपने अन्तर्मन द्वारा उस अदृश्य, सर्वशक्तिमान्, जगत् नियन्ता की सर्वोच्च सत्ता का अनुभव करना होगा तब कहीं हम इस ईश्वर द्वारा निर्मित दृश्यमान सृष्टि के उपादानों तथा उसके उद्देश्यों को आत्मसात कर पायेंगे।

सृष्टि की उत्पत्ति का विवेचन भारतीय दर्शन में प्राप्त होता है परन्तु भारतीय दर्शन के प्रमाण प्राचीन वैदिक ज्ञान पर आधारित है। महाभारत महाकाव्य अपने समय से पूर्व समस्त ज्ञान–विज्ञानों का संकलन है जो प्राणिमात्र का सृष्टि से तादात्म्य स्थापित करता है। सृष्टि उत्पत्ति का विशद् विवेचन महाभारत के बारहवें पर्व शान्ति पर्व के मोक्ष धर्म पर्व में महर्षि भरद्वाज तथा महर्षि भृगु के मध्य प्रश्नोत्तर संवाद आख्यान में उपलब्ध है। महर्षि भरद्वाज और भुगुमुनि के संवाद का वर्णन करते हुए पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर को सृष्टि ज्ञान के गूढ़ विषय से परिचित कराया।

सृष्टि अर्थात् समुद्र, आकाश, पर्वत, मेघ, भूमि, अग्नि और वायु स्वरूप वाले जगत् की उत्पत्ति कैसे हुयी ? किसके द्वारा सृष्टि के अन्तर्गत प्राणियों के वर्णविभाग, कार्यविभाग का सृजन किया गया ? भृगुमुनि के इन गुढ़ प्रश्नों का उपदेश करते हुए महर्षि भरद्वाज कहतें हैं कि यथा–सृष्टि निर्माण के कारण भूत, अजन्मा, अविनाशी, अव्यक्त, सर्वव्यापक, परमसत्तावान् तथा इन्द्रियातीत स्वरूप वाले आद्यदेव परमब्रह्म भगवान् नारायण ही इस चराचर सृष्टि क निर्माता एवं प्रशासक हैं।

ससागरः सगगनः सशैलः सबलाहकः।
सभूमिः साग्निपवनो लोकऽयं केन निर्मितः।।[1]
मानसो नाम विख्यातः श्रुतपूर्वो महर्षिभिः।
अनादिनिधनो देवस्तथा भेद्योऽजरामरः।।[2]

सृष्टि निर्माण के प्रारम्भिक चरण में सर्वशक्तिमान् स्वयंभू भगवान् ने महत् तत्त्व और अहंकार तत्त्व को उत्पन्न किया। ये तत्त्व समष्टिगत बुद्धि एवं अहंकार स्वरूप को प्रकट कर चेतना उत्पन्न करते हैं।

सोऽसृजत् प्रथमं देवो महान्तं नाम नामतः।
महान् ससर्जाहंकारं स चापि भगवानथ।।[3]

सृष्टि अथवा जगत् के निर्माण के कारणभूत पञ्चतत्त्वों यथा आकाश, जल, अग्नि, वायु तथा पृथ्वी को प्रकट कर अपने उदरनाल के दिव्य कमल से विधिनिर्माता ब्रह्मा जी को उत्पन्न किया।

आकाशादभवद् वारि सलिलादग्निमारूतौ।
अग्निमारूतसंयोगात् ततः समभवन्मही।।[4]
ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा।
तस्मात् पद्मात् समभवद् ब्रह्मा वेदमयो निधिः।।[5]

सृष्टि के आधारभूत तत्त्वों में समुद्र उन परमपिता का रक्त है, तथा वे आकाश रूपी उदर, पर्वतश्रेणि रूपी हड्डियों तथा मांसपेशियों के स्वरूप वाली पृथ्वी के सम्मिलन का प्रतिफल हैं। ये तत्त्व पञ्चमहाभूतों के व्यक्त स्वरूप हैं।

शैलास्तस्यास्थिसंज्ञास्तु मेदो मांस च मेदिनी।
समुद्रास्तस्य रूधिरमाकाशमुदरं तथा।।[6]

आकाशादि पञ्चमहाभूत ही समस्त लोकों में व्याप्त है। प्राणिमात्र के जीवन का सृजन इन्हीं महाभूत तत्त्वों से होता है। जीवज्ञान विषयक विवेचन करते समय अधिकांश विद्वान् यह सिद्ध करते हैं कि मात्र जीवयुक्त प्राणी ही चेतन स्वरूप है अन्य स्थावर–जंगम पदार्थो में पञ्चमहाभूत नही समाहित होता है। यह एक महाभ्रम एवं उच्चकोटि का अज्ञान है। इस चराचर सृष्टि की उत्पत्ति भगवान् नारायण से हुई है। उनके द्वारा उत्पन्न सृष्टि के समस्त अवयव चेतना स्वरूप है; जीवयुक्त हैं। उन सबमें आकाशादि पञ्चमहाभूत किञ्चित् स्वरूप भेद से उपस्थित होते हैं। पर्वत, जीवमान है क्योंकि वहाँ भी वृक्षादि सजीव पदार्थो का अस्तित्त्व है। वृक्षादि के फल एक नई सृष्टि के

अंकुर होते हैं। पृथ्वी सगर्भा है, यह सबको उत्पन्न करती है। समुद्र स्वयं जीव उत्पत्ति का निवास स्थल है।

जङ्गमानां च सर्वेषां शरीरे पञ्च धातवः।
प्रत्येकशः प्रभिद्यन्ते यैः शरीरं विचेष्टते।।[7]
सुखदुःखयोश्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यन्ते।।[8]

सृष्टयुत्पत्ति के आद्य कारण आकाशादि पंच अवयवों के समन्वय द्वारा चराचर प्राणि समूह की शारीरिक संरचना पृथ्वीमय, अग्निमय, आकाशमय, जलमय, वायुमय कोशों से युक्त हैं इन तत्त्वों के भी प्रमुख अवयव का क्रमशः विभाजन उल्लेखनीय है। यथा– शारीरिक तंत्र में त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा और स्नायु तत्त्व का संघात् पृथ्वीमय है। तेज, क्रोध, नेत्र, ऊष्मा और जठराठिन रूपी प०च तत्त्वों का संघात अग्निमय है। कर्ण, नासिका, मुख, हृदय तथा उदर आदि का संघात आकाशमय है। कफ, पित्त, स्वेद, वसा और रक्त रूपी प०च आर्द्र तत्त्व जलमय हैं। प्राण, व्यान, अपान, समान तथा उदान रूपी प०चवायुओं का संघात वायुमय है।

त्वक् च मांसं तथास्थीनि मज्जा स्नायुश्च पञ्चमम्।
इत्येतदिह संघातं शरीरे पृथिवीमयम्।।[9]
तेजो ह्यग्निस्तथा क्रोधश्चक्षुरूष्मा तथैव च।
अग्निर्जरयते यश्च पञ्चाग्नेयाः शरीरिणः।।[10]
श्रोतं घ्राणं तथाऽऽस्यं च हृदयं कोष्ठमेव च।
आकाशात् प्राणिनामेते शरीरे पञ्चधातवः।।[11]
श्लेष्मा पित्तमथ स्वेदो वसा शोणितमेव च।
इत्यापः पञ्चधा देहे भवन्ति प्राणिनां सदा।।[12]
प्राणात् प्रणीयते प्राणी व्यानाद् व्यायच्छते तथा।
गच्छत्यपानोऽधश्चैव समानो हृदवस्थितः।।[13]

आकाशादि पञ्चभूतों में क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध रूपी गुणों का प्रभाव रहता है। इन पाँच गुणों का पञ्चभूतों में पृथक्–पृथक् अस्तित्त्व प्रकट एवं गहण किया जाता है। जिसमें आकाश महाभूत शब्द गुण को, वायु महाभूत शब्द तथा स्पर्श गुण को, अग्नि महाभूत, शब्द, स्पर्श तथा रूप गुण को, जल महाभूत–शब्द, स्पर्श, रूप, रस गुण को तथा पृथ्वी महाभूत–शब्द स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध इन पांचो गुणों का ग्रहण करने में समर्थ हैं।

गन्धः स्पर्शो रसो रूपं शब्दश्चात्र गुणाः स्मृताः।[14]

उक्त पञ्चमहाभूत, स्व पञ्चगुणों से युक्त होकर सदैव शरीरधारी प्राणियों में जाग्रतावस्था में रहने वाले प्रमुखतः जल, अग्नि तथा वायु रूपी तीन महाभूत तत्त्व ही अवस्थित होते हैं। ये तत्त्व शरीरधारी के प्राणमूल हैं इन्हीं के द्वारा सृष्टि के समस्त व्याप्त अवयवों का बोधज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

आपोऽग्निर्मारूतश्चैव नित्यं जाग्रति देहिषु।
मूलमेते शरीरस्य व्याप्य प्राणानिह स्थिताः।।[15]

पाञ्चभौतिकजन्य शरीर में आत्मतत्त्व मस्तिष्क के गुहा में अवस्थित होकर प्राणी के सम्पूर्ण शरीर के अवयवों को सुरक्षा प्रदान करता है, वहीं प्राणतत्त्व मस्तिष्क तथा अग्नि में पूर्णतः स्थित होकर सम्पूर्ण शरीर के चालन इन्द्रियों को चेतनता प्रदान करता है। इस प्रकार प्राणसहित आत्मा से युक्त चेतनस्वरूप वाला ही जीव है, जो सर्वव्यापक, सर्वात्मा, परमात्मतत्त्व का अंश रूप होता है। वह जीव पञ्चमहाभूतों, मन, बुद्धि और अहंकार के संयोजन से विषयी होकर अस्तित्त्ववान हो जाता है।

श्रितो मूर्धानमात्मा तु शरीरं पदिपालयन्।
प्राणो मूर्धनि चाग्नौ च वर्तमानो विचेष्टते।।[16]
स जन्तुः सर्वभूतात्मा पुरूषः स सनातनः।
मनो बुद्धिरहङ्कारों भूतानि विषयश्च सः।।[17]

परमात्म अंशभूत जीवात्मा से उत्पन्न प्राणिमात्र का शरीर प्राणतत्त्व की चेतना एवं तेज प्रकृति के कारण शरीर के समस्त आन्तरिक अङ्गों, विभागों, इन्द्रियों तथा वाह्याङ्गों को चैतन्य एवं प्रकाश्य अवस्था में लाकर परिचालित एवं प्रतिक्रियाशील करता है। इस प्रकार प्रतिक्रियाशील समस्तअङ्ग वायुमहाभूत के समानवायु से निर्दिष्ट हो जाने पर अपनी–अपनी गति अथवा समयानुसार अनवरत संचालित होते रहते हैं।

एवं त्विह स सर्वत्र प्राणेन परिचाल्यते।
पृष्ठतस्तु समानेन स्वां स्वां गतिमुपाश्रितः।।[18]

भगवान् नारायण द्वारा उत्पन्न बुद्धि, अहंकार युक्त बीज मात्र सृष्टि की सर्जना हुई, उसी के फलस्वरूप यह चराचर जगत् अस्तित्त्ववान है, इस सृष्टि में जन्म लेने वाला अर्थात् उत्पत्ति प्राप्त करने वालो प्राणी का विनाश एवं मरण अवश्य होता है। परन्तु इस उत्पत्ति विनाश के कारण सृष्टिक्रम किसी प्रकार से प्रभावित नही होता है क्योंकि इससे जीव अर्थात् आत्मा का विनाश नही होता है। वह जीव मृत शरीर को छोड़कर नये शरीर को चेतना प्रदान कर पुनः अपना अस्तित्त्व और सत्ता स्थापित करता है।

बीजमात्रं पुरा सृष्टं यदेतत् परिवर्तते।
मृतामृताः प्रणश्यन्ति बीजाद् बीजं प्रवर्तते।।[19]

ईश्वर द्वारा उत्पन्न सृष्टि का क्रम अनवरत चलता रहता है, इसलिये जीवात्मा की यात्रा भी अनवरत चलती रहती है। मृत शरीर का त्याग करने से पूर्व जीव का तथा उस जीव द्वारा संपादित दानादि तथा उसके कृत्यकर्मो का कभी भी विनाश नही होता है वह भी जीव के साथ अनवरत गतिशील सत्ता वाला होता है। जीव द्वारा पुनः शरीर धारण करने पर जीव के पूर्व दानादि कर्म का प्रतिफल शुभाशुभस्वरूप में वर्तमान जीवशरीर को प्राप्त होता है जैसा कि आज एक किवंदन्ती प्रचलित है कि व्यक्ति द्वारा किये कर्मो का फल उसे अगले जन्म में भोगना पड़ता है। इस किंवदन्ती का भाव उक्त पूर्व वाक्य से सम्बन्धित है।

न प्रणाशोऽस्ति जीवस्य दत्तस्य च कृतस्य च।
याति देहान्तरं प्राणी शरीरं तु विशीर्यते।।[20]

वह जीवात्मा पञ्चमहाभूतों के गुणों को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने वाले मन का प्रदर्शक है, वह ही सुख–दुःख का अनुभव करता है। वही जीवात्मा जब पाञ्चभौतिक प्राकृतिक गुणों से युक्त होता है, तब वह क्षेत्रज्ञ स्वरूप वाला होता है परन्तु जब वह इन प्रप०चादि गुणों से सम्यक् मुक्ति प्राप्त कर लेता है तब वह अविनाशी परमात्मा के स्वरूप को धारण करता है।

आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः।।[21]

वह आत्मतत्त्व परमात्मा का ही स्वरूप है और क्षेत्रज्ञावस्था में रहते हुए भी वह शरीर से कमलपत्र पर दृष्ट जलबिन्दुओं की तरह अपने पृथक् स्वरूप को ही उद्घाटित करता है। वह जीवात्मा सत्त्व, रजस तथा तमस गुणों को धारण करता है।

तस्मिन् यः संश्रितों देहे ह्यब्बिन्दुरिव पुष्करे।।[22]
तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणानिमान्।।[23]

इस प्रकार चराचर जगत् में प्राणियों के समस्त शरीरों में चेतन स्वरूप जीवात्मा को समष्टिस्वरूप प्रजापति ब्रह्मा का अंश माना क्योंकि प्रजापति ब्रह्मा का अंश माना क्योंकि प्रजापति ब्रह्मा जी ने ही भगवान् विष्णु की इच्छानुसार सृष्टि एवं जीवों की उत्पत्ति की है।

मानसोऽग्निः शरीरेषु जीव इत्यभिधीयते।
सृष्टिः प्रजापतेरेषा भूताध्यात्मविनिश्यचे।।[24]

प्रजापति ब्रह्मा के द्वारा ही अद्यावधि ज्ञात प्राणिवर्गो यथा देव, दनुज, गन्धर्व, दैत्य, असुर, यक्ष, राक्षस, नाग, पशु–पक्षी पिशाच और मानव को अपने विवेक से उत्पन्न किया गया। विधिनिर्माता द्वारा चातुर्वर्ण्य मानव व्यवस्था में ब्राह्मण को श्वेत, क्षत्रिय को लाल, वैश्य को पीला तथा शूद्र को काला रंगरूप प्रदान किया। यह रंग वर्ण विभाग सृष्टि के प्रारम्भ में नहीं था, कालान्तर में अपने कर्मो के कारण अस्तित्त्व में आया। ब्रह्मा जी द्वारा उत्पन्न समस्त सृष्टि ही एक रूप, वर्णभाव स्वरूपा थी।

देवदानव गन्धर्वा दैत्यासुर महोरगाः।
यक्षराक्षसनागाश्च पिशाचा मनुजास्तथा।।[25]
न विशेषोऽस्ति वर्णानाः सर्व ब्राह्ममिदं जगत्।।[26]

इस प्रकार संक्षिप्त रूप से महाभारत के शान्तिपर्व में उपदिष्ट महर्षि भरद्वाज–भुगु का सृष्टि उत्पत्ति विषयक आख्यान का विवेचन किया गया। इस संवाद में दृश्यमान चराचर सृष्टि के समस्त अवयवों, तत्त्वों तथा गुणों का सम्यक् ज्ञान उपदिष्ट है। सृष्टि के अवयवों में जीवात्मा का परमात्मा से तादात्म्य स्थापित किया गया। पञ्चमहाभूतों से निर्मित यह नश्वर शरीर आत्मा द्वारा त्याग किये जाने पर नष्ट हो जाता है परन्तु जीव आत्मा परमात्मा का अविकल अंश होने के कारण नये शरीर का धारण करता है। इस प्रकार सृष्टिक्रम की प्रक्रिया अनवरत गतिशील रहती है। महाभारत इस संसार की अनन्त ज्ञानराशि है, इसमें अनन्त गूढ़ विषयों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है सृष्टयुत्पत्ति की भाँति अनेक ऐसे गूढ़ विषय हैं जिनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर अपने व्यष्टि–समष्टि सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करना चाहिए। आधुनिक समय एक वैज्ञानिक युग है अपनी प्राचीन ज्ञान विरासत को विज्ञान की कसौटी पर खरा उतारने के लिए हमें अपने ऋषियों द्वारा प्रदत्त ज्ञान का संरक्षण, संवर्धन और प्रचार करना चाहिए।

सन्दर्भ

1. महाभारत, शान्तिवर्ष – 182–7
2. महाभारत, शान्तिवर्ष – 182–11
3. महाभारत, शान्तिवर्ष – 182–13
4. महाभारत, शान्तिवर्ष – 182–14
5. महाभारत, शान्तिवर्ष – 182–15
6. महाभारत, शान्तिवर्ष – 182–17
7. महाभारत, शान्तिवर्ष – 184–19
8. महाभारत, शान्तिवर्ष – 184–17
9. महाभारत, शान्तिवर्ष – 184–20
10. महाभारत, शान्तिवर्ष – 184–21
11. महाभारत, शान्तिवर्ष – 184–22
12. महाभारत, शान्तिवर्ष – 184–23
13. महाभारत, शान्तिवर्ष – 184–24
14. महाभारत, शान्तिवर्ष – 184–$26\frac{1}{2}$
15. महाभारत, शान्तिवर्ष – 184–44
16. महाभारत, शान्तिवर्ष – 185–03
17. महाभारत, शान्तिवर्ष – 185–04
18. महाभारत, शान्तिवर्ष – 185–05
19. महाभारत, शान्तिवर्ष – 186–15
20. महाभारत, शान्तिवर्ष – 187–01
21. महाभारत, शान्तिवर्ष – 187–23
22. महाभारत, शान्तिवर्ष – 187–24
23. महाभारत, शान्तिवर्ष – 187–25
24. महाभारत, शान्तिवर्ष – 187–31
25. महाभारत, शान्तिवर्ष – 188–3
26. महाभारत, शान्तिवर्ष – 188–10